ARYAVART SHODH VIKASH PATRIKA
ISSN No. 2347-2944,RNI TITLED No. UPBIL04292
RNI REG. No. UPBIL/2014/66218, SOCLREG. No. 561/2013-14 Vol-5, No.-II,PP-1-3, YEAR-Dec.2016

आदिवासी समाज के सन्दर्भ में : राजनीतिक एवं सामाजिक आन्दोलन

❑ डॉ0 राजीव कुमार श्रीवास्तव

सारांष– जब भी अस्मिता की राजनीति कमजोर पड़ने लगती है और समाज के तमाम तबकों से षिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार की माँग मुखर होने लगती है तब–तब आदिवासी और गैर–आदिवासी समुदायों का परंपरागत नेतष्त्व डोमिसाइल, या अधिवास का मुद्दा छेड़कर अपने–अपने वोट बैंकों पर अस्मितावादी जकड़बंदी को पुनः स्थापित करने का प्रयास करता है।

इस मुद्दे की जड़ें झारखंड आंदोलन में गहरी समाई हुई है। संथाल विद्रोह के समय से ही आदिवासी दिकू (बिहारी लोगों उस समय अँग्रेज तथा जमींदार) के षोशण के विरूद्ध आवाज उठाते रहे है। बाद में अपने राजनैतिक जीवन के षुरूआती वर्शो में महाजनों के अत्याचारों और छल से आदिवासियों की जमीन हड़पने के खिलाफ षिबू सोरेन ने गिरिडीह के इलाके में आंदोलन चलाया था। बाहरी लोगों (बिहारी, बंगाली, मारवाड़ी) द्वारा अपनी जमीन और संसाधनों की सालों तक चली अंधी लूट के चलते आदिवासी समुदाय में उनके प्रति एक स्वाभाविक विक्षोभ पैदा हो गया था, जो जब तब 'दिकू भगाओ', 'बिहारी भगाओ' की माँगों के इर्द गिर्द हिंसक–अहिंसक आंदोलनों में फूटता रहा। आदिवासी नेताओं ने उस दौर से ही इसे अपनी राजनीति चमकने एक हथियार के बतौर इस्तेमाल किया है। झारखंड आंदोलन के दौरान जन्मी तमाम पार्टियाँ और उनके नेता जब–जब अपना जन समर्थन कमजोर पड़तें देखते, तब तब वे दिकू भगाओ की माँग को जोर षोर से उठाने लगते। आंदोलन के तमाम नेताओं ने अपने आदिवासी जनाधार को लंबे समय तक ये सपना दिखाया है कि बाहरी लोगों को भगाने भर से ही राज्य की तमाम समस्याएँ सुलझ जाएँगी।

अधिवास (Domicial) का मुद्दा– गौरतलब बात ये है कि आदिवासियों के षोशण और राज्य के संसाधनों के दोहन के खिलाफ होने वाले तमाम आंदोलनों में यहाँ की सदान जातियाँ (गैर–आदिवासी झारखंडी जैसे साहू मंडल और दलित जातियाँ) आदिवासियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर संघर्श करती आई हैं। जब 2001 में राज्य की पहली सरकार ने, मुख्यमंत्री बाबूलाल मरांडी के नेतृत्व में स्थानीय निवासियों को सरकारी नौकरियों में प्राथमिकता देने की अधिवास नीति लागू करने की कोषिष की, तो पहली बार सदान और आदिवासी एवं दूसरे के खिलाफ खड़े नजर आए (विद्या भूशणः 2012)। इसका एक बहुत बड़ा कारण था, सरकार द्वारा बिना पूरी तैयारी और अध्ययन के अधकचरे तरीके से अधिवास की व्याख्या करने की कोषिष करना और उसके आधार पर इस

विभागाध्यक्ष :– समाजशास्त्र विभाग, समन्वयक–उ0प्र0 राजर्शि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय,पी0जी0 कॉलेज बॉसडीह, बलिया, (उ0प्र0)

Vol-5, No.-II,PP-1-3, YEAR-Dec.2016

नीति को लागू करना। राज्य सरकार ने आदिवासियों के अलावा अन्य के डोमिसाइल का आधार 1932 में हुए भू–सर्वेक्षण (Land Survey) के खतियान में पूर्वजों के नाम को बनाया था। मगर झारखंड के कई इलाकों, जैसे पुराने सिंहभूम जिले, संथाल परगना में भू–सर्वेक्षण का काम 1932 में नहीं, बल्कि उसके काफी साल पहले या बाद में जाकर संपन्न हुआ था। ऐसे में इस इलाके के लोगों के लिए डोमिसाइल पाना मुष्किल हो गया। वहीं भूमिहीनों, खासकर दलितों और गरीब पिछड़ी जाति के लोगों को भी इस निति से आपत्ति हुई। नतीजतन इसके समर्थन और विरोध में कई हिंसा की घटनाएँ हुई तथा अंत में राज्य सरकार को इस अधकचरी डोमिसाइल नीति को वापस लेना पड़ा। इसका एक बड़ा कारण न्यायपालिका द्वारा उठाई गयी आपत्ति भी था, क्यूंकि आदिवासी समुदाय को संविधान सम्मत सीमा से अधिक आरक्षण देने की रौ में राज्य सरकार यह स्पश्ट नहीं कर पाई थी कि वह पिछड़े वर्गों और दलितों के लिए तयषुदा आरक्षण को कैसे लागू करेगी। ध्यान रहे कि इसके विरोध में खड़ें सदान समुदाय के कई लोगों का राज्य के मूल निवासियों को सरकारी नौकरियों में प्राथमिकता देने से कोई विरोध नहीं था, लेकिन वे मूल निवासी की परिभाशा को ज्यादा समावेषी बनाना चाहते थे। वहीं आदिवासी नेतष्त्व का एक हिस्सा इसे सिर्फ आदिवासियों तक सीमित रखने का पक्षधर रहा है। बहरहाल, परिभाशाओं के उपर चल रही जंग अभी खत्म नहीं हुई, बल्कि जारी है।

जो भी हो, डोमिसाइल लागू करने की यह कोषिष असफल होकर भी आने वाले दिनों में जनसमर्थन खो रहे आदिवासी तथा गैर आदिवासी, दोनों समुदायों के परंपरागत नेतष्त्व को वोट भुनाने का मुद्दा दे ही गयी। पहले पहल मयूरभंज के पूर्व भाजपा सांसद सालखान मुर्मू अपनी अलग पार्टी बनाकर, झारखंड में प्राथमिकता आदिवासियों को तथा बाहरी भागाओ की मुहिम चलाते रहे, तथा महाराश्ट्र में बाहरी लोगों के खिलाफ राज ठाकरे की कार्यवाहियों का समर्थन करते रहे। मगर कालांतर में वे राजनीति के हाषिए पर चले गये और अब फिर राजनैतिक जमीन की तलाष में भाजपा में लौट आए है। वहीं हाल के दिनों में झामुमो गठबंधन सरकार के मुख्यिा हेमंत सोरेन ने अधिवास की बात छेड़कर इस मुद्दे को एक बार फिर गरमा दिया है। समाज विज्ञानी अनंत कुमार अपने एक लेख में लिखिते हैं कि मौजूदा समय में झारखंड में रह रहे लोगों का लगभग 70 प्रतिषत गैर आदिवासी है (अनंत कुमार : 2014) । ऐसे में, बाहरी भगाओ की माँग पर राजनीति करना पूर्णतः अव्यवहारिक होगा।

लेकिन, इसके बावजूद, आदिवासी नेतष्त्व का एक तबका इस माँग के समर्थन में अब भी खड़ा है। सिंहभूम की आदिवासी राजनीति के पुराने दिग्गज तथा झारखंड पार्टी के पुराने षीर्श नेता (अब कॉग्रेस में) 91 वर्शीय बागुन सुम्बराई आज भी मानते है कि जिस तरह अँग्रेजों ने भारत छोडा, उसी तरह बाहरी लोगों को झारखंड छोड़ना होगा। कुछ दिन पहले लिए गए एक साक्षात्कार में वे बता रहे थे कि हाल ही में वे हेमंत सोरेन को समझाने की कोषिष कर रहे थे कि यदि वे बाहरियों को राज्य

से निकाल देते है तो यहाँ की राजनीति में अमर हो जाएँगें। पिछला विधान सभा चुनाव

हारने के बाद सक्रिय राजनीति में हाषिए पर खडे सुम्बराई इससे पहले भी 1960 और 1980 के दषक में चर्चा में आए थे, जब उनके नेतष्त्व में चले बाहरी भगाओं और अपराधी भगाओं आंदोलनों के दौरान भारी हिंसा की घटनाएँ हुई थीं। (सिन्हाः 2013)।

झारखंड को उत्तर भारत में आदिवासी राजनीति के सबसे मजबूत केन्द्र की संज्ञा दी जाती रही है। यूँ देखा जाए तो आदिवासी समुदाय के लिए विधानसभा में आरक्षित सीटों के मामले में छत्तीसगढ़, झारखंड के मुकाबले बीस ही ठहरता है। छत्तीसगढ़ में कुल विधानसभा सीटों का लगभग 30 प्रतिषत या 90 निर्वाचन योग्य सीटों में से 34 आदिवासी समुदाय के लिए आरक्षित है, जबकि झारखंड में यह 81 निर्वाचन योग्य सीटों में से 28 या ऐसी कुल सीटों का 22.6 प्रतिषत ही है, लेकिन आदिवासी राजनीति की धमक के मामले में झारखंड छत्तीसगढ़ से कहीं आगे है। जहाँ छत्तीसगढ़ में षुरूआती तीन सालों को छोड़कर (जबकि अजीत जोगी राज्य के मुख्यमंत्र थे) कोई आदिवासी मुख्यमंत्री नहीं बन पाया है, वहीं झारखंड में आज तक कोई गैर–आदिवासी मुख्यमंत्री नहीं बन सका है। आदिवासी राजनीति के दबाव के चलते ही आज भी राज्य में कोई परिसीमन नहीं हो सका है और छोटा नागपुर टेनेन्सी ऐक्ट अभी भी अपने पुराने रूप में लागू है, जिसमें संषोधन करने की बात भर करने वाले को व्यापक विरोध का सामना करना पड़ता है। यहाँ तक की पुरानी मानकी मुंडा व्यवस्था के अभी भी कई ग्रामीण इलाकों में प्रभावी होने के चलते पंचायतों को पूरी तरह 75वें संविधान संषोधन के अनुरूप गठित नहीं किया जा सका है और तब भी पंचायतों को वे तमाम षक्तियाँ हस्तांतरित नहीं की जा सकीं है, जो उन्हें अन्य राज्यों में प्राप्त है, क्यूंकि आदिवासी नेता उन्हें अपनी मानके मुंडा के प्रतिस्पर्धी के बतौर देखते है। कुल मिलाकर ये तो तय है कि राज्य में आदिवासी राजनीति अभी भी मजबूत स्थिति में है और कई नीतिगत बदलाओं को रोकने में सफल रही है, लेकिन इस सबसे आदिवासी समुदाय के क्या भला हो सका है, ये एक भिन्न मामला है।

संसाधन अधिक्य फिर भी गरीबी व भ्रश्टाचार– भारत के कुल खनिज भंडारों का विषेश तौर पर लौह अयस्क और कोयले के विषाल भंडार झारखंड में मौजूद है, लेकिन इसके बावजूद राज्य के 24 में से 21 जिले देष के सर्वाधिक पिछड़े 250 जिलों की सूची में षामिल है और गरीबी के मामले में झारखंड सिर्फ उड़ीसा से पीछे है। झारखंड आंदोलन के दौरान लोगों को उम्मीद थी कि अलग झारखंड के गठन के बाद स्थितियों में सुधार होगा क्यूंकि तब झारखंड का अपना आदिवासी और सदान नेतृत्व राज्य के संसाधनों और विकास कार्यो की देखरेख करेगा, लेकिन ये उम्मीदें पूरी नहीं हो सकीं, बल्कि राज्य बनने के बाद विकास कार्यो की जमकर अनदेखी हुई और भ्रश्टाचार अपने चरम पर पहुच गया। राज्य के तमाम षीर्शस्थ आदिवासी और गैर–आदिवासी नेता भ्रश्टाचार के आरोपों में जेल गये, जिनमे पूर्व मुख्यमंत्री भी षामिल है।

विकास कार्यो की बात की जाए तो 2008–09 तक झारखंड सरकार सड़क निर्माण पर जितना धन खर्च करती थी वो राजस्थान सरकार के इसी मद में किए खर्च का एक चौथाई थी। यहाँ तक कि कई केन्द्रीय योजनाओं, जैसे मनरेगा का

ISSN No. 2347-2944,RNI TITLED No. UPBIL04292
RNI REG. No. UPBIL/2014/66218, SOCLREG. No. 561/2013-14

Vol-5, No.-II,PP-1-3, YEAR-Dec.2016

पैसा भी बिना खर्च हुए केंन्द्र को वापस लौट जा रहा था (नाथन एवं दयालः 2009)।

संसाधनों की उपलबता के बावजूद गरीबी और पिछड़ेपन (खासकर अफ्रीकी और एषियाई विकासषील देषों के सन्दर्भ में) को समझने के लिए 1980 और 90 के दषक के कई समाज विज्ञानियों और अर्थषास्त्रियों ने कई अध्ययन किए जिनसे आगे चलकर संसाधन श्राप या आधिक्य की विडंबना का सिद्धांत अस्तित्व में आया। 1993 में अपने एक अध्ययन में पहली बार इस सिद्धांत का इस्तेमाल करते हुए रिचर्ड औती ने कहा था कि खनिज संपन्न अफ्रीकी देषों के पिछड़ेपन के पीछे एक बड़ा कारण यह था कि उस देष का षासक वर्ग, खनन कंपनियों को खनन की अनुमति देकर ही इतना ध ान अर्जित कर लेता था कि उसे अपने खर्चो के लिए करों या विकास कार्यो पर ध्यान देने की जरूरत ही नहीं पड़ती थी। इसी के चलते खनन को छोड़कर अर्थव्यवस्था के अन्य सेक्टर विकसित नहीं हो पाते थे और राज्य खनन से होने वाली आय का रेंट सीकर (rent seeker) मात्र बनकर रह जाता था ।

देव नाथन और हरिष्वर दयाल अपने एक लेख में इसी सिद्धांत के माध्यम से झारखंड की स्थिति को समझने की कोषिष करते हैं। वे कहते हैं कि निजी–सार्वजनिक खनन कंपनियों को राज्य में खनन करने की अनुमति देने भर से ही राज्य का षासक वर्ग, राजनेता–अधिकारी आदि इतनी आय प्राप्त कर लेता है कि उसे सार्वजनिक निर्माण कार्यो और कल्याणकारी योजनाओं को लागू करके उनसे मिलने वाले कमिषन की जरूरत ही नहीं रह जाती और इसी के चलते वे इनकी उपेक्षा में लगे रहते हैं। भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में नागरिक सुविधाओं के बदले वोट का फैक्टर राजनेताओं पर न्यूनतम सुविधाएँ, सड़क–बिजली–षिक्षा–स्वास्थ्य आदि उपलब्ध कराने का दबाव बनाता है। लेकिन नाथन और दयाल का मानना है कि राज्य में अभी तक अस्मिता की राजनीति इतनी मजबूत है कि इस प्रकार के लोकतांत्रिक दबाव के लिए मुकम्मल परिस्थितियाँ नहीं बन पाई हैं। ऐसे में अपने राजनैतिक क्षेत्र (जगन्नाथपुर और मझगाओं की 'हो' जनजाति बहुल विधानसभा सीटें) में 'हो' अस्मिता और न्यूनतम विकास कार्य जैसे सड़कें बनवाकर ही मधु कोड़ा भ्रश्टाचार के गंभीरतम आरोपों के बावजूद चुनाव दर चुनाव सफलताएँ अर्जित करते रह सकते है। नाथन और दयाल मानते है कि राज्य का विकास तभी संभव है, जब अस्मिता की राजनीति कमजोर पड़े और राज्य की राजनीति में नयूनतम लोकतांत्रिक मूल्य आधारित संस्कृति की स्थापना हो।

राज्य में पिछले 13 वर्शो से जारी राजनैतिक अस्थिरता भी इस तरह की राजनैतिक षक्तियों और माँगों के लिए जमीन मुहैया कराती रहती है, क्यूंकि इस तरह की राजनीति के दम पर एक या दो सीटें पाने वाले व्यक्ति या पार्टी भी एक अस्थिर राजनैतिक माहौल में सरकार बनाने के इच्छुक दलों के साथ मोल भाव करके सत्ता सुख का लाभ लेते रहे हैं। झारखंड में पिछले 14 सालों में 3 विधानसभा चुनाव हुए है और प्रति विधानसभा अमूमन 4 मुख्यमंत्री बने है। क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थो के लिए कभी इस दल या उस दल के साथ सरकार में साझेदारी करने की एक पूरी पंरपरा झारखंड में कायम हो चुकी है और बंधु तिर्की, जोवा मांझी, मधु कोड़ा जैसे लोग इस अवसरवादी

परंपरा के प्रतीक बन गये है। वहीं राज्य में बढ़ती नक्सल गतिविधियाँ और नक्सली संगठनों का अपराधी गिरोहों में विघटन भी एक चिंता का विशय है। आने वाले चुनाव राज्य को मुष्किलों के इस चक्रव्यूह से निकालने की कोई दिषा देते है, या नहीं ये अभी कहना मुष्किल है।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि बंगाल और उड़ीसा की तर्ज पर ही झारखंड में भी एक अधिवास नीति होनी चाहिए, जिससे राज्य की नौकरियों आदि में स्थानीय निवासीयों को प्राथमिकता दी जा सके, लेकिन यदि इस नीति को समावेषी तथा अधिकाधिक झारखंडी जनता के प्रति न्याय करने की दषश्टि से नहीं बनाया गया, तो यह सांस्कषतिक राश्ट्रवाद के जैसी ही एक अलोकतांत्रिक पक्षपातपूर्ण और हिंसक कार्यवाही भर बनके रह जाएगी। आज की वैष्विक स्थिति में यह तटस्थ विचार पूर्णतया तर्क संगत नही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) कुमार, अनंत, 2014, द पॉलिटिक्स बिहाइंड झारखंड्स डोमिसाइल पोलिसी, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, अप्रैल 26, खंड XLIX, सं0 17।

(2) नाथन, देव एवं दयाल, हरिश्वर, 2009ए रिसोर्स कर्स एंड झारखंड, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, दिसंबर 19, खंड XLIV, सं0 15 ।

(3) सिन्हा, अनुज कुमार, 2013, झारखंड आंदोलन का दस्तावेज : संघर्श और षहादत, पृ0 152–157, प्रभात प्रकाषन, नई दिल्ली।

(4) विधाभूशण, 2012, इतिहास के मोड़ पर झारखंड, काउन प्रकाषन, राँची।

(5) भारतीय समाजषास्त्र समीक्षा– भारतीय समाजषास्त्र परिशद की षोध पत्रिका सामाजिक विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली, अंक–2, जुलाई / दिसम्बर 2014 ।

(6) डॉ0 श्रीवास्तव, राजीव कुमार– वैष्वीकरण एवं समाज– वैभव लक्ष्मी प्रकाषन, वाराणसी– 2014 पेज 65 ।